6

संवादों के दरकते सेतु

*शारदा कुमारी**

कहा जाता है कि बच्चे नासमझ होते हैं, लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता है। परिस्थितियाँ बच्चों पर भी उतना ही प्रभाव डालती हैं, जितना बड़ों पर। परिवार में चल रही परेशानियों का बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यदि हम यह सोच लें कि बच्चों को कुछ समझ नहीं आता तो सही बात नहीं है। यह लेख एक बच्ची के घर में चल रही परेशानी पर आधारित है कि किस तरह एक अध्यापिका ने बच्ची की मनोस्थिति को ना समझते हुए अक्सर कक्षा के अन्य बच्चों के सामने उसे अपमानित करती थी।

नौ वर्ष से ऊपर की तो नहीं है वह, पर चेहरे पर पड़ी विषाद की लकीरें ऐसी मानो कोई प्रौढ़ा घर-गृहस्थी का बोझ लिए बैठी हो। आँखों में जिज्ञासा, कोमलता के साथ-साथ एक निरीह-सा भय व्याप्त है। चौकन्ना होने का भाव लिए वह अपनी कक्षा की दीवार से सटकर बैठी है, कक्षा के भीतर नहीं, कक्षा के बाहर। ऐसा नहीं कि कक्षा के सभी बच्चे बाहर हैं, वे सब कक्षा के भीतर ही हैं। पढ़ाई का काम चल रहा है यानि कि अध्यापिका भी कक्षा में मौजूद है। (इस वाक्य से कहीं यह न समझा जाए कि कक्षा में जब अध्यापक मौजूद नहीं होते तो सीखना-सिखाना नहीं होता।)

जब सभी बच्चे कक्षा में हैं तो यह तरुबाला बाहर क्यों बैठी है? जी हाँ, तरुबाला नाम है उसका, कक्षा चौथी में पढ़ती है और अध्यापिका द्वारा दंडित किए जाने पर कक्षा के बाहर बैठने को बाध्य है। किस बात पर दंड दिया गया होगा तरुबाला को? चुलबुलाहट कक्षा के अनुशासन (?) के दायरे में सिमट नहीं पा रही होगी, अपने साथी से बातें कर रही होगी, कोई पाठ्यपुस्तक नहीं लायी होगी या फिर कुछ याद करके नहीं आई होगी। शायद गृहकार्य पूरा नहीं किया होगा? आमतौर पर ये ही बचपन की कुछ वजहें होती हैं जिनको आधार बना कर बच्चों को विद्यालयों और घरों में भी दंड दिया जाता है। तरुबाला

* *वरिष्ठ प्रवक्ता,* जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, सेक्टर-7, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली

को दंडित करने का क्या कारण है? पूछने पर उसकी अध्यापिका तो बिफर ही पड़ी, ''अरे कोई एक वजह हो तो बताऊँ। टाइम से नहीं आती। वर्दी में नहीं आती। कक्षा में मुँह नहीं खोलती। मुँह तो ऐसे बंद रहता है जैसे बर्फ की सिल्ली जमा रखी हो अंदर। सबसे बड़ी बात तो ये कि इसके बस्ते में कॉपी किताब एक नहीं मिलेगी। जानती हैं, क्या भर कर लाती है अपने बस्ते में? बताना क्या, अभी दिखाती हूँ इसका बस्ता।''

पता नहीं क्यों मुझे ठीक न लगा कि भरी कक्षा में तरुबाला का बस्ता खोला जाए। मुझे लगा कि यह उसकी निजता के अधिकार का हनन होगा। अतः बिफरती हुई अध्यापिका को शांत होने के लिए कहा। पर वह अभी भी बहुत उत्तेजित थीं, ''नहीं-नहीं मैडम आप देखिए, अभी देखिए इसका बस्ता, नहीं तो आप यह सोचकर जाएँगी कि टीचर बच्चों को समझते नहीं, न मेहनत करते हैं, बस उन्हें सजा देते हैं। आप सभी देखिए इसके बस्ते का सामान। ये कबाड़ क्या मुझे अपने सिर पर मारना है''। अपने-आपको संभवतया सही साबित करने के लिए वह अधीर हो उठी और तरुबाला से उसका बस्ता खींच लिया। अपना बस्ता वापिस लेने के लिए उस बच्ची के शरीर में हल्की-सी हलचल हुई पर उसकी हरकत फसल की कटाई के बाद खाली हुए खेतों में पड़े अकेले पंछी-सी निरीह जान पड़ी। मेरे साथ ऐसा होता तो मेरी मुठ्ठियाँ भिंच जातीं और आँखों से अंगारे बरसते पर उसकी आँखों में छाई कातरता और शिथिल पड़े हाथ अध्यापक की ताकत का विरोध न कर सके।

तरुबाला के होंठ कुछ कहने के लिए कंपकंपाए पर तब तक बस्ता खुल चुका था। अध्यापिका एक-एक करके सारा सामान बाहर निकाल रही थी - ''देखिए मैम, ये चिमटा, ये बटना-मैं यहाँ चटनी बनावाऊँगी न इससे, ये देखिए तीन-तीन चाकू। किसका गला रेतेगी ये, मेरा? ये पेचकस ये पतरी - - - - - - - -।''

तरुबाला के बस्ते से सामान का निकलना शायद बच्चों को सहन नहीं हुआ। उनकी आँखों में अपनी सहपाठिनी के लिए दुःख, उदासी, बेचैनी, दर्द उमड़ पड़ा था।

कुछ सुगबुगाहटों के साथ कक्षा में खामोशी व्याप्त थी। बच्चों की नेकदिली तरुबाला की भावनाओं से जुड़ रही थी। इससे पहले की तरुबाला सहित कक्षा के बाकी बच्चों की आँखों से चिंगारियाँ फूटतीं या घृणा के भाव उमड़ते, मैं अध्यापिका को कक्षा के बाहर ले आई। अध्यापिका व्यग्र थी तरुबाला के किस्से बताने के लिए। उन्होंने बताया कि पिछले चार-पाँच माह से वह कोई पुस्तक कॉपी कुछ नहीं लाती विद्यालय में। उसका बस्ता अटपटी वस्तुओं से अटा रहता है। पूछने पर किसी तरह का उत्तर नहीं देती। तरह-तरह के बहाने बनाती है जैसे-कॉपी चूल्हे के पास रखी थी, जल गई। किताब ट्रंक के पीछे सरक गई, हत्थे नहीं आती आदि-आदि।

आपकी कक्षा में भी तरुबालाएँ या तरुबाल होंगे। आप क्या करेंगे उनके साथ?

- कक्षा में सभी बच्चों के सामने तरह-तरह के सवाल पूछ कर उन्हें लज्जित करेंगे?
- उन्हें कक्षा के बाहर निकालकर दंडित करेंगे?

- कक्षा में होने वाली गतिविधियों में शामिल होने से रोकेंगे?
- अपने पास बुलाकर आत्मीयता जता कर उनसे संवाद स्थापित करेंगे और बात की तह तक जाने का प्रयास करेंगे?
- हो सकता है आप एक कदम और आगे बढ़ें और उनके अभिभावकों से मिलकर बच्चे की समस्या या तनाव को जानने की कोशिश करें,
- हो सकता है आप उनके साथियों से बातचीत करें और उनके व्यवहार के बारे में जानना चाहें।

अपनी समझ से आप बच्चे के साथ जो भी करेंगे, इस बात को कभी नहीं भूलेंगे कि बच्चे भी मानवोचित गरिमा के हकदार हैं और हमारी ओर से किसी भी ऐसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं करते जिससे कि उनके आत्मसम्मान और अस्मिता को ठेस पहुँचती हो।

बच्चे हम अध्यापकों से किस तरह के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं, इस मुद्दे पर चर्चा करने से पहले आप यह ज़रूर जानना चाहेंगे कि आखिर तरुबाला अपने बस्ते में कॉपी-किताब, पेंसिल आदि की जगह चाकू-छुरी आदि चीज़ें क्यों भर कर ला रही थी? कक्षा में प्रताड़ना सहने के बावजूद भी वह अध्यापिका के कहे अनुसार पुस्तकें इत्यादि क्यों नहीं ला पा रही थी? आपको यह तो महसूस हो ही रहा होगा कि तरुबाला के साथ निश्चित रूप से कोई बहुत बड़ी बाध्यता होगी जिसके रहते वह अध्यापिका के बार-बार कहने, लज्जित एवं दंडित होने के बावजूद अपना व्यवहार नहीं बदल पा रही थी या फिर आप यह सोच रहे हैं कि 'बड़ी ढीठ और बेशर्म किस्म की लड़की होगी तरुबाला जो सज़ा पाने को तो तैयार है मगर कहना मानने को तैयार नहीं।' तरुबाला के बारे में या किसी भी बच्चे के बारे में अपनी राय ज़ाहिर करने से पहले क्या ज़रूरी नहीं कि हम उसके साथ संवाद स्थापित करें। क्या हम इतने लाचार, बेबस, अक्षम हैं कि बच्चे के मानस में चल रहे झंझावातों की पहचान न कर सकें? फिलहाल आप यह तो जानना ही चाह रहे होंगे कि तरुबाला के साथ क्या विवशताएँ जुड़ी हुई थीं।

मैंने तरुबाला और अपने बीच की दूरियों को पाटने के लिए अथक प्रयास किए और पता चला कि वह बस्ते में जो कुछ भी भरकर लाती है उसकी मुख्य वजह उसके पिता का उसकी माता के प्रति व्यवहार है। उसने बताया – ''जे बटना मैं चटनी पीसन ताई थोड़ी न लाई। बे तो जब पापा काम से लौट बे न तो अम्माँ पे खूब गुस्साते। नूँ ज़ोर-ज़ोर से चीखे-अरी छिनाल दिन भर मस्ताती रहै बीगी। ढंग से तरकारी न बन सकत तोपे। ये बटना से तोरा सर फोड़ कर मसल दूँगा।'' तरुबाला क्या कोई भी बच्ची नहीं चाहेगी कि उसकी माँ का सिर फोड़ा जाए। बस माँ को बचाने के लिए वह हर उस वस्तु को अपने बस्ते में छिपा लेती है जिसका नाम उसका पिता माँ को मारने के लिए लेता है, क्योंकि तरुबाला के अनुभव उसे बता चुके हैं कि पूरे घर भर में उसका बस्ता एकमात्र ऐसी जगह/वस्तु है जिसे उसके पिता ने कभी न देखा न हाथ लगाया है और न ही देखने की ज़रूरत समझता है।

अब आप ही बताएँ कि तरुबाला का बालमन अगर माँ की जान बचाने के लिए यह छोटा-सा प्रयास कर रहा है तो क्या कुछ गलत कर रहा है? क्या आप इस बात की ज़रूरत नहीं समझते कि अध्यापिका को तरुबाला के हृदय में चल रही हलचलों को जानना चाहिए था। यदि वह उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि में थोड़ा भी झाँकने की कोशिश करती तो उसे कक्षा की गतिविधियों से वंचित करने का दंड कभी नहीं देती। यहाँ मुख्य रूप से यह तथ्य उभर कर आता है कि बच्चों के सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों को जाने-समझे बगैर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया बेमानी होगी। तरुबाला को 'समस्याग्रस्त विद्यार्थी' की संज्ञा दी गई, उसे 'व्यवहारगत समस्याओं से ग्रस्त बच्ची' की श्रेणी में रखा गया। क्या वास्तव में वह समस्याग्रस्त बच्ची थी अथवा अपने परिवार की समस्या का अपने तरीके से हल ढूँढ़ने वाली एक समझदार बच्ची थी?

महान पोलिश शिक्षाशास्त्री यानुश कोर्चाक अपने एक पत्र में लिखते हैं कि हमें बालक के अंत:करण के स्तर तक ऊँचा उठना चाहिए, न कि उसे कृपा दृष्टि से देखना चाहिए। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है, जिसे हम शिक्षकों को बड़ी गहराई से समझना चाहिए। सच्चा शिक्षक बच्चे को किन्हीं अलौकिक गुणों की खान या कोई आदर्श नहीं समझता, परंतु साथ ही वह इस बात को भी नज़रअंदाज नहीं कर सकता कि बच्चे जिन नज़रों से दुनिया को देखते हैं, अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति उनकी जो भावनात्मक और नैतिक प्रतिक्रिया होती है, उसमें एक विशिष्टता, स्पष्टता, बालसुलभ सरलता, निष्कपटता और एक ख़ास तरह की बारीकी होती है। यानुश कोर्चाक के इस आह्वान का कि हमें बच्चों के अंत:करण के स्तर तक ऊँचा उठना चाहिए, अर्थ यही है कि बच्चे जिस प्रकार इस संसार को अपने मनो-मस्तिष्क से समझते हैं, उनका जो बाल-सुलभ विश्वबोध है, उसे शिक्षक को बड़ी बारीकी से समझना और अनुभव करना चाहिए। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मानवीय संवेनाओं के कुछ ऐसे पहलू हैं, जिनको आत्मसात किए बिना कोई भी व्यक्ति सच्चा शिक्षक नहीं हो सकता और इन सबमें सबसे प्रमुख बात है-बच्चे के अंत:करण में, उसके आंतरिक जगत में, उसके मन की दुनिया में पैठने की क्षमता, उसके सामाजिक-पारिवारिक सांस्कृतिक संदर्भों को जानने की चेष्टा। बहुत से अध्यापकों के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे बच्चों को कृपा का पात्र समझते हैं और यह भूल जाते हैं कि विद्यार्थी जीते-जागते इंसान हैं, जो विद्यालय में ज्ञान-बोध के ही नहीं अपितु सृजन और मानवीय संबंधों के जगत में पदार्पण कर रहे हैं। विद्यालयी पाठ्यपुस्तकें एवं अन्य प्रक्रियाएँ विद्यार्थियों द्वारा संसार को जानने-समझने, उसका बोध पाने का एक सबसे महत्वपूर्ण रूप हैं। बच्चे किस प्रकार का बोध पाते हैं, उनकी क्या आस्थाएँ बनती हैं, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि उनका मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक दूसरे शब्दों में उनका आंतरिक, पारिवारिक-सामाजिक जीवन कैसा होगा।

विद्यालयी शिक्षा से जुड़े अब तक के अपने अनुभव इस महान सत्य को तो स्थापित कर ही

चुके हैं कि बच्चे के जीवन में प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक की भूमिका कितनी विशाल होती है। नन्हे विद्यार्थी अपने अध्यापक में कितनी आस्था रखते हैं, शिक्षक और शिक्षार्थी का एक-दूसरे पर कितना विश्वास है, बच्चे अपने शिक्षक में इंसानियत का कैसा आदर्श देखते हैं-ये ही हैं शिक्षण के वे बुनियादी और सबसे जटिल नियम जिन्हें समझ लेने, आत्मसात कर लेने पर अध्यापक सच्चे शिक्षक बन जाते हैं। मौजूदा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम अध्यापकों की तैयारी के लिए बहुत कुछ करते हैं। व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने वाले साधनों की चर्चा करते हैं, बच्चों की रुचियों-रूझानों, विकासात्मक कार्यो को समझने की वकालत करते है, तरह-तरह की शिक्षण विधियों को पारंगत करने के लिए अथक परिश्रम करवाते हैं, नाना प्रकार की शिक्षण सामग्री तैयार करवाते हैं और सीखने के सिद्धांतों को मस्तिष्क में ठूँसने की भरसक कोशिश करते हैं पर शैक्षिक परिघटनाओं के बीच सूक्ष्मतम और जटिलतम परस्पर संबंधों, अन्योन्याश्रयों का अध्ययन करने के मौके नहीं देते जो अध्यापकीय जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं। हम मानते हैं कि हमारे प्रशिक्षण कार्यक्रम बौद्धिक अलगाव का शिकार हैं, वे हमें इस तरह की तैयारी के साथ विद्यालय नहीं भेजते जिससे कि हमारे रोजमर्रा के विमर्श में अकादमिक बहसें शामिल हो सकें और हम बच्चों को केंद्र में रखकर उनके बारे में कुछ सोच सकें। पर इस सबके लिए क्या ज़रूरी है कि हम प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पहलकदमियों का इंतजार करें। हम यदि बच्चों के लिए हैं तो क्यों नहीं हम स्वयं अपने आप में बदलाव लाने की कोशिश करें।

❑❑❑